



उदर रोग में योग एवं वैकल्पिक चिकित्सा के व्यवहारिक अनुप्रयोग

आरती देवी

शोध छात्रा रोल न० M.A.YOGA25003(M.A.YOGA 1ST YEAR)

जगतगुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उ०प्र०

जितेन्द्र प्रताप सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, योग विभाग, जगतगुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट,

उ०प्र०

शोध-सार

आधुनिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को स्वस्थ एवं निरोग रखने की कामना रखता है। इसके निमित्त वह वर्तमान में अनेकानेक आयामों का प्रयोग भी करता है। परन्तु दुर्भाग्य की मानव मात्र स्वास्थ्य के अतुल्य सुख से वंचित रह जाता है। क्योंकि एक स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य का असल राज तो पाचन प्रणाली में छिपा है। इसके अतिरिक्त एक और अहम प्रणाली है जिसे हम निष्कासन प्रणाली के नाम से भी जानते हैं। यही दो मूलभूत प्रणाली हैं जो हमारे सुखी जीवन का आधार माने जाते हैं। इन दोनों प्रणालियों के सम्पूर्ण क्रियाशीलता की अनुपस्थिति में स्वास्थ्य एवं सुख दोनों कपोल कल्पना आभाषित होते हैं। भारतीय यौगिक ग्रन्थों एवं चिन्तर में सर्वप्रथम निरोगी काया की बात स्वकार की गयी है। और यह काया तब निरोगी हो सकती है जब पाचन एवं निष्कासन तन्त्र पूर्णतः क्रियाशील हो। वस्तुतः उदर को सृजन एवं जनन का केन्द्र भी माना जाता है। नवजीवन यदि यहा पलता है तो जीवन वरण करने वाले रोग दोषों का सृजन केन्द्र भी यही स्थान माना जाता है। अस्तु यह कहना अतिसंयोक्ति कदापि नहीं होगी कि जीवन सृजन स्थान यदि यही है तो अधिकायत रोग सृजन भी यही से होते हैं।

प्रस्तावना:-

मानवीय उदर रोगों कि परिचर्चा के मध्य प्राकृतिक जीव जन्तुओं की उदरान्तर्गत संरचना एवं क्रियाविधि का अवलोकन करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। जिससे हमें इन रोगों के सृजन की स्थिति एवं संकल्पना का ज्ञान प्रकृति स्वयं प्रदान करती है। वस्तुतः इसका विस्तृत ज्ञान हमें विज्ञान एवं



चिकित्सकीय प्रणालियां तो प्रदान करती ही है। परन्तु सांसारिक जीव जन्तुओं की पाचन एवं निष्कासन प्रक्रिया मानवयी प्रक्रिया से इतर है। जहाँ जानवर जैसे गाय, बैल, घोड़ा इत्यादि आहार अत्यन्त मन्दगति से प्राप्त करते हैं वही ग्रहण किए आहार को अत्यन्त तीव्रता से निष्कासित करते हैं। मानव इसके ठीक विपरीत कार्य करता है। भोजन शीघ्रता से ग्रहण करता है और निष्कासन अत्यन्त मंद गति से करता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक जीवन शैली भी कम कसूरवार नहीं है इन्हें जन्म देने के लिए। वस्तुतः अनेकानेक कारणों के चलते यह शारीरिक व्यवस्था चरमरा जाती है। इसके परिणाम स्वरूप अनेक जीर्णह्यसीय एवं चयापचय सम्बन्धित रोग स्वतः जन्म लेते हैं। इन रोगों में प्रमुख रूप से अन्तः स्त्रावी ग्रन्थि के रोग, दमा, गठिया, चर्म रोग, हृदय रोग, मधुमेह, कैंसर, यौन रोग, मानसिक रोग इत्यादि आते हैं। ये रोग अपनी आरम्भिक स्थिति में तो सहज प्रतीत होते हैं परन्तु गंभीर स्थिति व्यक्ति को काल के गाल में ले जाने के लिए पर्याप्त है।

अतः इन सभी दोषों रोगों के उपचार के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि प्राथमिक स्तर पर पाचन प्रणाली को शक्तिसम्पन्न बनाया जाए। साथ ही प्राण शक्ति एवं ऊर्जा को सन्तुलित एवं जागृत किया जाए जिससे पाचन प्रणाली स्वयं अपना उपचार आरम्भ कर देती है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में मानव के अन्दर व्याप्त उपचार शक्ति स्वतः जागृत हो रोग निवृत्त करती है। और यही योग चिकित्सा का मूल सिद्धान्त भी है। दूसरे पर्याय में यह विज्ञान की कार्यशैली में समस्त शारीरिक मानसिक दोषों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि हमारे शरीर की पीनीयल और पीट्यूटरी गलैण्ड अपना पूर्ण रूपेण कार्य करती है तो शरीर और उदर में किसी प्रकार के दोष ही उत्पन्न नहीं होते हैं। क्योंकि मनुष्य एक चिन्तनशील प्रणा है वह भोजन के साथ विचार एवं चिन्तन भक्षण भी करता है। चिन्तन अधिक होनेसे अन्तः स्त्रावी तन्त्र में रसो का स्त्राव अनियन्त्रित हो जाता है। जो उदर रोगों का कारण भी बन सकता है। जबकि किसी पशु पक्षी को सहजता से उदर रोगों से युक्त देखा जा सकता है। अस्तु उदर रोग प्रबन्धन में केवल मात्र शारीरिक, व्यायाम, रोग, आहार ही मनुष्य उपचार पद्धति नहीं व्यक्ति विशेष के विचार चिन्त भी उतनी महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं।

पाचन शक्ति:—

मानव मात्र जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त कुछ न कुछ भोजन के रूप में ग्रहण करता रहता है। यह प्रक्रिया उसके लिए जीवन भर अनवरत कार्य करती रहती है। व्यक्ति जो भोजन ग्रहण करता है वह



सामान्य रूप से दिखने वाली प्रक्रिया है। परन्तु जैसे ही कोई निवाला अन्दर निगला जाता है उस निवाले को आन्तरिक शरीर की एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। जिससे लगभग सामान्यतया 4 से 6 घण्टे का समय लगता है। अब भोजन एक बार किया जाए तो उसमें आन्तरिक शरीर उतना ही श्रम करता है। य बार-बार भोजन ग्रहण करे तब भी उसे अन्दर इतना ही श्रम करना पड़ता है। श्रम की भी अपनी सीमा व शक्ति है। यदि कार्य की अधिकता रहेगी तो श्रम शक्ति का प्रभावित होना सहज ही है। ठीक यही प्रक्रिया उदर के साथ भी होती है। जो बाद में व्यक्ति को रूग्ण बना देती है। अस्तु पाचन एवं निष्कासन प्रक्रिया में पाचन शक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है। जिसका प्रत्येक व्यक्ति को सीमित प्रयोग करना चाहिए। प्राचीन में तो दो या तीन काल में भोजन की पद्धति थी जिसके चलते उदर रोग विरले थे। और आज हर क्षण व्यक्ति कुछ न कुछ खाता रहता है जो व्यक्ति को सहज रूप से पाचन शक्ति की क्षीणता का मुख्य कारण भी हो सकता है।

पाचन संस्थान एवं षट्कर्म:-

योग विद्या में हठयोग के अर्न्तगत षट्कर्म का वर्णन स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। इसमें मुख्यतः छः कार्य मुख्य माने जाते हैं।

धौतिर्वास्तिस्तथा नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा ।

कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ।।

इन षट्कर्मों में धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक, कपालभाति मुख्य है। शास्वत रूप से दृष्टावलोकन करे तो इसमें धौति, वस्ति, लौलिकी, एवं कपालभाति ये समस्त अभ्यास प्रत्यक्ष एवं अप्रतत्यक्ष रूप से उदर एवं उदर के आस-पास के क्षेत्रों को शसक्त बनाते हैं। अस्तु यह स्वीकारोक्ति है कि ये समस्त अभ्यास उदर दोषों के शमन में अत्यन्त अनिवार्य भूमिका का निर्वाह करते हैं। छः में से चार अभ्यास उदर से सम्बन्धित हैं। इसका सीध या आशय यही है कि उदर रोग केवल मात्र आज की समस्या नहीं है अपितु पाच्य में भी यह विकट समस्या रही होगी। जिसके निमित्त प्रथम् शोधन अधिकार उदर का माना गया। इस हेतु इसे पूर्ण रूपेण स्वस्थ करने पर अधिक बल प्राचीन योग विदो ने प्रदान किया था। परन्तु वर्तमान में शोधन क्रियाएं ज्यादा प्रचलित नहीं हैं बल्कि इसके सापेक्ष आसन एवं प्राणायाम अधिक प्रचलित हैं।

अस्तु उदर दोषों के शमन के निमित्त आधुनिक योगियों को चाहिए कि अपना प्रभाव इस दिशा कि ओर जरूर बढ़ाए। साथ ही आन्तरिक शुद्धता के उपरान्त आसन-प्राणायाम भी अपना प्रभाव अत्यन्त शीघ्र



प्रदान करने लगते हैं। इन रोगों से ग्रसित व्यक्ति को निश्चित ही योग्य मार्गदर्शन में वैधानिक रूप से षट्कर्म का प्रयोग करे। सम्भव है कि इनके प्रयोग से ही उदर दोषा नियंत्रण में आ जाए एवं आसन इत्यादि की आवश्यकता ही न पड़े।

आसन:—

आसने उदर से सम्बन्धित अनेक प्रकार के हैं। और इन आसनों का प्रमुख कार्य उदरस्थ चेतना को शसक्त करना एवं उदर की नस नाड़ियों सहित उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि करना है। इसके निमित्त सूक्ष्म व्यायाम सहित सूर्यनमस्कार पवनमुक्तासन एवं इस समूह के आसन महत्वपूर्ण हैं। साथ ही ब्रजासन, मण्डूकासन अर्द्ध चक्रासन इत्यादि उदर सामर्थ्य को बढ़ाने में सहायता प्रदान करते हैं। भुजंगासन एवं धनुरासन भी उदर एवं पृष्ठप्रदेश के लिए हितकर हो सकते हैं।

प्राणायाम:—

प्राणायामों के अर्न्तगत नाडी शोध प्राणायाम, कपालभांति प्राणायाम इत्यादि लाभदायक हैं। साथ ही साथ मानसिक विकार नियंत्रण हेतु भ्रामरी प्राणायाम अत्यन्त आवश्यक हो जाता है जिससे मनोविकारों से होने वाली उदर दोषों में शान्ति प्राप्त होती है।

बन्ध:—

उदर दोषों के शमन में मूलबन्ध एवं उड्डियान बंध भी अपनी भूमिका निभाते हैं। अस्तु इनका प्रयोग बांछित है।

निन्द्रा:—

पाचन एवं निष्कासन तन्त्र के क्रियान्वयन का मूल आधार टिका है निन्द्रा पर, अस्तु रोग जनित व्यक्ति को यथावत निन्द्रा का आहरण भी अत्यन्त आवश्यक है।

ध्यान:—

उदर दोषों में पद्मासन व वज्रासन में अवस्थित होकर नाभि क्षेत्र में पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

आहार:—

उदर दोषों में आहार पोषक तथा सुपाच्य ही होना आवश्यक है। त्याज्य वस्तुओं में मसालेदार, तीक्ष्ण, गरिष्ठ, मिठाइयां, मैदा एवं मैदे से बनी वस्तुएं केक इत्यादि का सेवन न करे। ये समस्त वस्तुएं ही हमारे पाचन एवं निष्कासन के लिए विष के समान मानी जाती हैं। इसके अतिरिक्त अम्ल उत्पादन में भी ये



भोज्य पदार्थ अनियंत्रण को उत्पन्न करते हैं। भोज्य पदार्थ में ताजा भोजन, हरी सब्जियां, फल, फूल, खिचड़ी, दूध इत्यादि ग्रहण करना चाहिए। चाय, काफी, सिगरेट, शराब इत्यादि का सेवन वर्जित है।

उपवास—

भोजन करना और करते रहना मानव वृत्ति है। इस कार्य में उदर सतत् क्रियाशील रहता है। जिसमें उदरस्थ चेतना सतत् कमजोर होती चली जाती है। इस प्रक्रिया में उपवास द्वारा व्यक्ति कि उदरस्थ चेतना का विकास शसक्तीकरण हो जाता है। अस्तु जितना आवश्यक आकारीकरण है उतना ही आवश्यक मानव उदर के लिए उपवास भी होता है। अस्तु उपवास का महत्व उदर के लिए अत्यन्त आवश्यक भी है।

आयुर्वेदः—

- (1) कच्चे बेल का गुदा तथा सोंठ—दोनों की चटली आधा चम्मच प्रतिदिन सेवन।
- (2) जवाखार, सज्जीखार, काला नमक, सेंधा नमक, सोंठ, पीपल तथा अजमोद सबको मिलाकर 2 — 2 चुटकी काढ़ा बनाकर सेवन करना चाहिए।
- (3) त्रिफला चूर्ण का रात्रि में गर्म पानी से सेवन करे।
- (4) त्रिफला, धनियां, त्रिफला, बड़ी पीपल, जीरा, अजमोद, पीपरामूल इन सबका चूर्ण बनाकर सेवन करें।

प्राकृतिक चिकित्साः—

- (1) एनिमा लगावाएं तथा उसके बाद उबली सब्जी का सेवन करे।
- (2) पेट पर गीली पट्टी का प्रयोग 20 दिन तक।
- (3) पीठ तथा पेट में 2 मिनट तक पानी की धार दे।
- (4) उपवास सम्भव हो तो करे तथा नीबू पानी का सेवन करे।

उदर रोगों में यौगिक चिकित्सा स्वयं सिद्ध एवं सार्थक है। केवल मात्र योग के प्रयोग से उदर दोषों को दूर किया जा सकता है। परन्तु इसके अतिरिक्त यदि वैकल्पिक चिकित्सा भी प्रयोग करे तो परिणाम निरोग के रूप में शीघ्र प्राप्त हो सकते हैं। इन विषयों के साथ-साथ उचित आहार-बिहार, व्यायाम एवं स्वस्थ चिन्तन से इन दोषों को जड़ से समाप्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थः—

घेरण्य संहिता, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, बिहार योग भारती, मुंगेर, बिहार, प्रथम संस्करण 1997, अध्याय